श्रीरायचन्द्रजैनशास्त्रमाला



श्रीयोगीन्दुदेवका

योगसार

अपभ्रंश मूल, संस्कृत छाया और
पं० जगदीशचन्द्र शास्त्रीकृत हिन्दी अनुवाद



संशोधक और संपादक
आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय
अर्धमागधी प्रोफेसर, राजाराम कॉलेज, कोल्हापुर

प्रकाशक
सेठ मणीलाल, रेवाशंकर जगजीवन जौहरी
ऑ० व्यवस्थापक, परमश्रुतप्रभावकमंडल
जौहरी बाजार, बंबई नं० २

वीर संवत् २४६३, विक्रम संवत् १९९३

मूल्य चार आना

प्रास्ताविक निवेदन

जोइन्दु या योगीन्दु उच्चश्रेणीके आध्यात्मिक गूढ़वादी हैं। इन्होंने जैन-अध्यात्मवादके ऊपर अपभ्रंश भाषामें दो ग्रंथ लिखे हैं। इनमें परमात्मप्रकाशसे तो जैनसमाज काफी परिचित है। दूसरा ग्रंथ योगसार है। यह मूल और संस्कृतछायासहित माणिकचन्द जैन-ग्रंथमालामें (ग्रंथ नं० २१) सन् १९२२ में प्रकाशित हुआ था। परन्तु उसका मूल पाठ और छाया जितनी चाहिये उतनी शुद्ध नहीं छपी थी। सन् १८९९ ई० में स्व० मुन्शी नाथूराम लमेचूने इस ग्रंथके दोहोंका हिन्दीपद्यानुवाद करके हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशित किया था, और उसे स्वानुभवदर्पणके नामसे प्रसिद्ध किया था। तत्पश्चात् सन् १९०६ ई० में यही स्वानुभवदर्पण माणिकलाल घेहेलाभाईके गुजराती अनुवाद और पं० फतेहचन्द कपूरचन्द लालनके विवेचनसहित बम्बईसे प्रकाशित हुआ था। अब यह योगसारका मूल अधोलिखित चार हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे तैय्यार किया गया है—

अ—यह प्रति जैनसिद्धांतभवन आराकी है, जो पं० के० भुजबली शास्त्रीके अनुग्रहसे प्राप्त हुई। यह देवनागरी प्रति दिल्ली भंडारकी प्रतिके आधारसे संवत् १९९२ में लिखी गई है। इसमें मूल और गुजराती शब्दार्थ (टब्बा) भी दिये हैं।

प—पाटन भंडारकी यह हस्तलिखित प्रति श्रीपुण्यविजयजी महाराजके अनुग्रहसे प्राप्त हुई। 'अ' प्रतिकी अपेक्षा यह प्रति अच्छी है। इसमें भी गुजराती टब्बा है। यह प्रति संवत् १७१२ की लिखी हुई है।

ब—यह प्रति पं० नाथूरामजी प्रेमीके अनुग्रहसे प्राप्त हुई। यह देवनागरी प्रति बहुत प्राचीन है, इसलिये इसके पृष्ठ त्रुटित हो गये हैं। चारों हस्तलिखित प्रतियोंमें यह प्रति प्राचीन, स्वतंत्र और शुद्ध है।

झ—यह प्रति पं० पन्नालालजी सोनीके अनुग्रहसे श्रीऐलक पन्नालाल दि० जैन-सरस्वती भवन झालरापाटनसे प्राप्त हुई है। यह आधुनिक है, और इसमें लेखकके प्रमादसे बहुत-से दोष रह गये हैं।

इन चारों प्रतियोंमें 'अ', 'प', और 'झ' प्रतिमें बहुत कुछ साम्य है, और 'ब' प्रति स्वतंत्र जान पड़ती है। प्रस्तुत संस्करणमें मूलके साथ दी हुई संस्कृतछायामें संधि नहीं की गई—छाया शब्दशः ही रक्खी गई है। इससे पाठकोंको लाभ होगा। इसका हिन्दी अनुवाद हमारे मित्र पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए० ने किया है। उक्त प्रतियोंके प्रेषक सज्जनोंका तथा अनुवादक महाशयका हम बहुत आभार मानते हैं।

राजाराम कालेज, कोल्हापुर.
आषाढ़ शु० ८
सं० १९९३.

आ. ने. उपाध्ये



श्रीमद्-योगीन्दुदेव-विरचितः

योगसारः

हिन्दीभाषानुवादसहितः ।

णिम्मल-झाण-परिट्ठया कम्म-कलंक डहेवि ।
अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि ॥ १ ॥
[निर्मलध्यानप्रतिष्ठिताः कर्मकलङ्कं दग्ध्वा ।
आत्मा लब्धः येन परः तान् परमात्मनः नत्वा ॥]

पाठान्तर—१) अपझ- °परट्ठिया.

अर्थ—जो निर्मल ध्यानमें स्थित हैं, और जिन्होंने कर्म-मलको भस्म कर परमात्म-पदको प्राप्त कर लिया है, उन परमात्माओंको नमस्कार करके—॥ १ ॥

घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ णंत-चउक्कु पदिट्ठु ।
तहँ जिणइंदहँ पय णविवि अक्खमि कव्वु सु-इट्ठु ॥ २ ॥
[(येन) घातिचतुष्कस्य कृतः विलयः अनन्तचतुष्कं प्रदर्शितम् ।
तस्य जिनेन्द्रस्य पादौ नत्वा आख्यामि काव्यं सुदिष्टम् ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-चउक. २) प-ताह, ब-तहि. ३) प-सुइ.

अर्थ—जिसने चार घातिया कर्मोंका नाश कर अनन्तचतुष्टयको प्रकट किया है, उस जिनेन्द्रके चरणोंको नमस्कार कर, यहाँ अभीष्ट काव्यको कहता हूँ ॥ २ ॥

संसारहँ भय-भीयहँ मोक्खहँ लालसयाहँ ।
अप्पा-संबोहण-कयइँ कय दोहा एक्कमणाहँ ॥ ३ ॥
[संसारस्य भयभीतानां मोक्षस्य लालसकानाम् ।
आत्मसंबोधनकृते कृताः दोहाः एकमनसाम् ॥]

पाठान्तर—१) अपब-भयमीतहं, ब-भयभीयाहं. २) झ-लालसियाहं ३) अझ-अप्पा कयइ संबोहण, पब-संबोहणकयइं. ४) बझ-दोहा एक्कमणाह. ५) अप-एकमणाहं.

अर्थ—जो संसारसे भयभीत हैं और मोक्षके लिये जिनकी लालसा है, उनके संबोधनके लिये एकाग्र चित्तसे मैंने इन दोहोंकी रचना की है ॥ ३ ॥

कालु अणाइ अणाइ जिउ भव-सायरु जि अणंतु ।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ णवि सुह दुक्ख जि पत्तु ॥ ४ ॥

[कालः अनादिः अनादिः जीवः भवसागरः एव अनन्तः ।
मिथ्यादर्शनमोहितः नैव सुखं दुःखमेव प्राप्तवान् ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–सायर. २) अप–अणंतो. ३) अ–मोहि, पझ–मोहिउ.

अर्थ—काल अनादि है, जीव अनादि है, और भवसागर अनन्त है। उसमें मिथ्यादर्शनसे मोहित जीवने दुःख ही दुःख पाया है, सुख नहीं पाया ॥ ४ ॥

जइ वीहउं चउ-गइ-गमणा तो पर-भाव चएहिं ।
अप्पा झायहि णिम्मलउ जिम सिव-सुक्ख लहेहिं ॥ ५ ॥

[यदि भीतः चतुर्गतिगमनात् ततः परभावं त्यज ।
आत्मानं ध्याय निर्मलं यथा शिवसुखं लभसे ॥]

पाठान्तर—१) व–वीहइ. २) झ–गमणु. ३) अझ–तौ...चएवि, प–तौ...चएदि, व–तो... चवेहि. ४) अवझ–लहेवि.

अर्थ—हे जीव ! यदि तू चतुर्गतिके भ्रमणसे भयभीत है, तो परभावका त्याग कर, और निर्मल आत्माका ध्यान कर, जिससे तू मोक्ष-सुखको प्राप्त कर सके ॥ ५ ॥

ति-पयारो अप्पा मुणहि परु अंतरु वहिरप्पु ।
पर झायहि अंतर-सहिउ वाहिरु चयहि णिभंतु ॥ ६ ॥

[त्रिप्रकारः आत्मा (इति) जानीहि परः आन्तरः वहिरात्मा ।
परं ध्याय आन्तरसहितः वाह्यं त्यज निर्भ्रान्तम् ॥]

अर्थ—परमात्मा, अन्तरात्मा और वहिरात्मा इस तरह आत्माके तीन प्रकार समझने चाहिये। हे जीव ! अन्तरात्मासहित होकर परमात्माका ध्यान कर, और भ्रान्ति रहित होकर वहिरात्माको त्याग ॥ ६ ॥

मिच्छा-दंसण-मोहियउ परु अप्पा ण मुणेइ ।
सो वहिरप्पा जिण-भणिउ पुण संसार भमेइ ॥ ७ ॥

[मिथ्यादर्शनमोहितः परं आत्मा न मनुते ।
स वहिरात्मा जिनभणितः पुनः संसारं भ्रमति ॥]

पाठान्तर—१) अ–मोहियओ, झ–मोहिओ. २) अपव–परु (रो) अप्पणो (णु) मुणइ.

अर्थ—जो मिथ्यादर्शनसे मोहित जीव परमात्माको नहीं समझता, उसे जिनभगवान्‌ने वहिरात्मा कहा है; वह जीव पुनः पुनः संसारमें परिभ्रमण करता है ॥ ७ ॥

जो परियाणइ अप्पु परु जो परभाव चएइ ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु सो संसारु मुएइ ॥ ८ ॥

[यः परिजानाति आत्मानं परं यः परभावं त्यजति ।
स पण्डितः आत्मा (इति) जानीहि स संसारं मुञ्चति ॥]

पाठान्तर—अपझ–अप्प. २) अप–पिंडउ अप्पा मुणह; झ–मुणिहिं.

अर्थ—जो परमात्माको समझता है और जो परभावका त्याग करता है, उसे पंडित-आत्मा (अन्तरात्मा) समझो। वह जीव संसारको छोड़ देता है ॥ ८ ॥

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु विण्हु[1] बुद्धु सिव संतु ।
सो परमप्पा जिण-भणिउ एहउ[2] जाणि णिभंतु ॥ ९ ॥

[निर्मलः निष्कलः शुद्धः जिनः विष्णुः बुद्धः शिवः शान्तः ।
स परमात्मा जिनभणितः एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥]

पाठान्तर—१) व–किण्हु. २) अ–एहो, झ–एहवउ.

अर्थ—जो निर्मल, निष्कल, शुद्ध, जिन, विष्णु, बुद्ध, शिव और शान्त है, उसे जिन-भगवान्‌ने परमात्मा कहा है—इसमें कुछ भी भ्रान्ति न करनी चाहिये ॥ ९ ॥

देहादिउ[1] जे परि कहिया[2] तें[3] अप्पाणु मुणेइ ।
सो वहिरप्पा जिणभणिउ पुणु संसारु भमेइ ॥ १० ॥

[देहादयः ये परे कथिताः तान् आत्मानं जानाति ।
स वहिरात्मा जिनभणितः पुनः संसारं भ्रमति ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–देहादिक जो. २) व–पर कहिय. ३) प–णं.

अर्थ—देह आदि जो पदार्थ पर कहे गये हैं, उन पदार्थोंको ही जो आत्मा समझता है, उसे जिनभगवान्‌ने वहिरात्मा कहा है। वह जीव संसारमें फिर फिरसे परिभ्रमण करता है ॥ १० ॥

देहादिउ जे परि कहिया ते अप्पाणु[1] ण होहिँ ।
इउ जाणेविणु[2] जीव तुहुँ अप्पा अप्प मुणेहि ॥ ११ ॥

[देहादयः ये परे कथिताः ते आत्मा न भवन्ति ।
इति ज्ञात्वा जीव त्वं आत्मा आत्मानं जानीहि ॥]

पाठान्तर—१)अप–अप्पणा. २) पझ–जाणिविण (°पिण).

अर्थ—देह आदि जो पदार्थ पर कहे गये हैं, वे पदार्थ आत्मा नहीं होते—यह जानकर, हे जीव ! तू आत्माको आत्मा पहिचान ॥ ११ ॥

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तो[1] णिव्वाणु लहेहि ।
पर अप्पा जइं[2] मुणहिं[3] तुहुँ तो संसार भमेहिं[4] ॥ १२ ॥

[आत्मन् आत्मानं यदि जानासि ततः निर्वाणं लभसे ।
परं आत्मानं यदि जानासि त्वं ततः संसारं भ्रमसि ॥]

पाठान्तर—१) व–तौ (तउ ?). २) अ–जो, झ–जउ. ३) पझ–मुणिहि. ४) अप–संसारुमुवेहि.

अर्थ—हे जीव ! यदि तू आत्माको आत्मा समझेगा, तो निर्वाण प्राप्त करेगा। तथा यदि तू पर पदार्थोंको आत्मा मानेगा, तो तू संसारमें परिभ्रमण करेगा ॥ १२ ॥

इच्छा-रहियउ तव करहि अप्पा अप्पु मुणेहि ।
तो लहु पावहि[2] परम-गई फुडु संसारु ण एहि[3] ॥ १३ ॥

[इच्छारहितः तपः करोषि आत्मन् आत्मानं जानासि ।
ततः लघु प्राप्नोषि परमगतिं स्फुटं संसारं न आयासि ॥]

पाठान्तर—१) अ-रहिओ, पझ-रहिउ. २) अ-पहु पावइ, पझ-पावइ. ३) व-लहु संसारु मुएहि.

अर्थ—हे आत्मन् ! यदि तू इच्छा रहित होकर तप करे और आत्माको समझे, तो तू शीघ्र ही परमगतिको पा जाय, और तू निश्चयसे फिर संसारमें न आवे ॥ १३ ॥

परिणामें[1] बंधु जि कहिउ मोक्ख वि[2] तह जि वियाणि[3] ।
इउ जाणेविणु[4] जीवँ[5] तुहुँ तहभाव हु[6] परियाणि ॥ १४ ॥

[परिणामेन बन्धः एव कथितः मोक्षः अपि तथा एव विजानीहि ।
इति ज्ञात्वा जीव त्वं तथाभावान् खलु परिजानीहि ॥]

पाठान्तर—१) पव-परिणामि, अ-परिणाम बंधु ज कहियो. २) अपझ-जि. ३) अपझ-वियाण. ४) झ-जाणेविण. ५) पझ-जीउ. ६) अप-तहि भावह, व-तहु भाव हु, झ-तह भाव हि.

अर्थ—परिणामसे ही जीवको बंध कहा है और परिणामसे ही मोक्ष कहा है—यह समझकर, हे जीव ! तू निश्चयसे उन भावोंको जान ॥ १४ ॥

अह पुणु अप्पा णवि[1] मुणहि पुण्णु जि करहि असेसु[2] ।
तो वि ण[3] पावहिं[4] सिद्धि-सुहु पुणु[5] संसारु भमेसु[6] ॥ १५ ॥

[अथ पुनरात्मानं नैव जानासि पुण्यं एव करोषि अशेषम् ।
ततः अपि न प्राप्नोषि सिद्धिसुखं पुनः संसारं भ्रमसि ॥]

पाठान्तर—१) झ-अप्पाणु वि. २) वझ-असेसु. ३) अपवझ-वि णु. ४) पावहु. ५) व-फुडु. ६) वझ-भमेसु.

अर्थ—हे जीव ! यदि तू आत्माको नहीं जानेगा और सब पुण्य ही पुण्य करता रहेगा, तो भी तू सिद्धिसुखको नहीं पा सकता, किन्तु पुनः पुनः संसारमें ही भ्रमण करेगा ॥ १५ ॥

अप्पा-दंसणु एक्कु[1] परु अण्णु ण किं पि वियाणि ।
मोक्खहँ कारण जोइया[2] णिच्छइँ एहउ जाणि[3] ॥ १६ ॥

[आत्मदर्शनं एकं परं अन्यत् न किमपि विजानीहि ।
मोक्षस्य कारणं योगिन् निश्चयेन एतत् जानीहि ॥]

पाठान्तर—१) व-इक्कु. २) अझ-जोईया. ३) अपझ-णिच्छय एहो जाणि.

अर्थ—हे योगिन् ! एक परम आत्मदर्शन ही मोक्षका कारण है, अन्य कुछ भी मोक्षका कारण नहीं, यह तू निश्चय समझ ॥ १६ ॥

मग्गण-गुण-ठाणइ कहिया विवहारेण वि दिट्ठि[1] ।
णिच्छय-णइँ अप्पा मुणहि[2] जिम पावहु परमेट्ठि[3] ॥ १७ ॥

[मार्गणगुणस्थानानि कथितानि व्यवहारेण अपि दृष्टिः ।
निश्चयनयेन आत्मानं जानीहि यथा प्राप्नोषि परमेष्ठिनम् ॥]

पाठान्तर—१) व-ववहारेण हु दिट्ठ. २) प-मुणिहि, व-मुणहु. ३ व-परमेठ.

अर्थ—मार्गणा और गुणस्थानका व्यवहारसे ही उपदेश किया गया है। निश्चयनयसे तो तू आत्माको ही (सब कुछ) समझ; जिससे तू परमेष्ठीपदको प्राप्त कर सके ॥ १७ ॥

गिहि-वावार-परिट्ठिया हेयाहेउ मुणंति।
अणुदिणु झायहिँ देउ जिणु लहु णिव्वाणु लहंति ॥ १८ ॥

[गृहिव्यापारप्रतिष्ठिताः हेयाहेयं जानन्ति।
अनुदिनं ध्यायन्ति देवं जिनं लघु निर्वाणं लभन्ते ॥]

पाठान्तर—१) अपक्ष-परट्टिया.

अर्थ—जो गृहस्थीके धंधेमें रहते हुए भी हेयाहेयको समझते हैं और जिनभगवान्‌का निरन्तर ध्यान करते हैं, वे शीघ्र ही निर्वाणको पाते हैं ॥ १८ ॥

जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु जिणु झायहु सुमणेण।
सो[3] झायंतहँ परम-पउ लब्भइ एक्क-खणेण ॥ १९ ॥

[जिनं स्मरत जिनं चिन्तयत जिनं ध्यायत सुमनसा।
तं ध्यायतां परमपदं लभ्यते एकक्षणेन ॥]

पाठान्तर—१) ब-समरहु. २) अपक्ष-जिण. ३) ब-जे.

अर्थ—शुद्ध मनसे जिनका स्मरण करो, जिनका चिन्तवन करो, और जिनका ध्यान करो; उनका ध्यान करनेसे एक क्षणभरमें परमपद प्राप्त हो जाता है ॥ १९ ॥

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ भेउ म किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारणे[3] जोइया णिच्छइँ एउ विजाणि ॥ २० ॥

[शुद्धात्मनां च जिनवराणां भेदं मा किमपि विजानीहि।
मोक्षस्य कारणे योगिन् निश्चयेन एतद् विजानीहि ॥]

पाठान्तर—१) ब-अहु (?). २) अ-भेद. ३) ब-कारणि, अक्ष-कारणिं.

अर्थ—हे योगिन्! मोक्ष प्राप्त करनेमें शुद्धात्मा और जिनभगवान्‌में कुछ भी भेद न समझो—यह निश्चय मानो ॥ २० ॥

जो जिणु सो अप्पा मुणहु इहु सिद्धंतहँ सारु।
इउ जाणेविणु जोइयहो[2] छंडहु मायाचारु ॥ २१ ॥

[यः जिनः स आत्मा (इति) जानीत एष सिद्धान्तस्य सारः।
इति ज्ञात्वा योगिनः त्यजत मायाचारम् ॥]

पाठान्तर—१) पक्ष-सिद्धंतहु. २) अपक्ष-जोइहु. ३) ब-छंडउ.

अर्थ—जो जिनभगवान् है वही आत्मा है—यही सिद्धांतका सार समझो। इसे समझकर, हे योगीजनो! मायाचारको छोड़ो ॥ २१ ॥

जो परमप्पा सो जि हउँ[2] जो हउँ[3] सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जोइया अण्णु म करहु वियप्पु ॥ २२ ॥

[यः परमात्मा स एव अहं यः अहं स परमात्मा ।
इति ज्ञात्वा योगिन् अन्यत् मा कुरुत विकल्पम् ॥]

पाठान्तर—१) ब–परअप्पा. २) अ–हुं. ३) अपज्ञ–जोईया.

अर्थ—जो परमात्मा है वही मैं हूँ, तथा जो मैं हूँ वही परमात्मा है—यह समझकर, हे योगिन्! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो ॥ २२ ॥

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ लोयायास-पमाणु ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु पावहु लहु णिव्वाणु ॥ २३ ॥

[शुद्धप्रदेशानां पूरितः लोकाकाशप्रमाणः ।
स आत्मा (इति) अनुदिनं जानीत प्राप्नुत लघु निर्वाणम् ॥]

पाठान्तर—१) अ–पूरीयो. २) ब–सो अप्पा मुणि जीव तुहुं. ३) ब–पावहि.

अर्थ—जो शुद्ध प्रदेशोंसे पूर्ण लोकाकाश-प्रमाण है, उसे सदा आत्मा समझो, और शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करो ॥ २३ ॥

णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि ववहारेँ सुसरीरु ।
एहउ अप्प-सहाउ मुणि लहु पावहिँ भव-तीरु ॥ २४ ॥

[निश्चयेन लोकप्रमाणः (इति) जानीहि व्यवहारेण स्वशरीरः ।
एनं आत्मस्वभावं जानीहि लघु प्राप्नोषि भवतीरम् ॥]

पाठान्तर—१) ब–णिच्छय. २) अप–लोइपमाणु. ३) अ–एहो. ४) अपज्ञ–पावहु.

अर्थ—जो आत्मस्वभावको निश्चयनयसे लोक-प्रमाण, और व्यवहारनयसे स्वशरीर-प्रमाण समझता है, वह शीघ्र ही संसारसे पार हो जाता है ॥ २४ ॥

चउरासी-लक्खहिँ फिरिउ कालु अणाइ अणंतु ।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिय एहउ जाणि णिभंतु ॥ २५ ॥

[चतुरशीतिलक्षेषु भ्रामितः कालं अनादि अनन्तम् ।
परं सम्यक्त्वं न लब्धं जीव एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥]

पाठान्तर—१) अ–चोरासी. २) अपज्ञ–लक्खह. ३) अ–फिरियो. ४) अ–एहो.

अर्थ—यह जीव अनादि अनन्तकालतक चौरासी लाख योनियोंमें भटका है, परन्तु इसने सम्यक्त्व नहीं पाया—हे जीव ! यह निस्सन्देह समझ ॥ २५ ॥

सुद्धु सचेयणु बुद्धु जिणु केवल-णाण-सहाउ ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु जइ चाहहु सिव-लाहु ॥ २६ ॥

[शुद्धः सचेतनः बुद्धः जिनः केवलज्ञानस्वभावः ।
स आत्मा (इति) अनुदिनं जानीत यदि इच्छत शिवलाभम् ॥]

पाठान्तर—१) अ–निसदिण. २) ब–चाहहि, अ–जो चाहहु.

अर्थ—यदि मोक्ष पानेकी इच्छा करते हो, तो निरन्तर ही आत्माको शुद्ध, सचेतन, बुद्ध, जिन, और केवलज्ञान-स्वभावमय समझो ॥ २६ ॥

जामं[1] ण भावहिं[2] जीव तुहुँ णिम्मल अप्प-सहाउ ।
ताम ण लब्भइ सिव-गमणु जहिँ भावइ तहि जाउ ॥ २७ ॥

[यावत् न भावयसि जीव त्वं निर्मलं आत्मस्वभावम् ।
तावत् न लभ्यते शिवगमनं यत्र भाव्यते तत्र यात ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–जाव. २) अपझ–भावहु. ३) अझ–भावहु, प–भावहि.

अर्थ—हे जीव ! जबतक तू निर्मल आत्मस्वभावकी भावना नहीं करता, तबतक मोक्ष नहीं पा सकता । अब जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ जा ॥ २७ ॥

जो तइलोयहँ झेउ जिणु सो अप्पा णिरु वुत्तु[1] ।
णिच्छय-णइँ एमइ भणिउं[2] एहउ[3] जाणि णिभंतु ॥ २८ ॥

[यः त्रिलोकस्य ध्येयः जिनः स आत्मा निश्चयेन उक्तः ।
निश्चयनयेन एवं भणितः एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥]

पाठान्तर—१) प–अप्पाणुरवुत्त. २) अ–णिच्छइणइ एमई भणियो, प–णिच्छइणइ एमइ भणिउ, झ–णिच्छइणए इम भणिउ. ३) अ–एहो जाणि, झ–एहो जाण.

अर्थ—जो तीनों लोकोंके ध्येय जिनभगवान् हैं, निश्चयसे उन्हें ही आत्मा कहा है—यह कथन निश्चयनयसे है । इसमें भ्रांति न करनी चाहिये ॥ २८ ॥

वय-तव-संजम-मूल-गुण[1] मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु ।
जाव ण जाणइ[2] इक्क पर सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥ २९ ॥

[व्रततपःसंयममूलगुणाः मूढानां मोक्षः (इति) न उक्तः ।
यावत् न ज्ञायते एकः परः शुद्धः भावः पवित्रः ॥]

पाठान्तर—१) अझ–संयय. २) झ–जाणै.

अर्थ—जबतक एक परम शुद्ध पवित्र भावका ज्ञान नहीं होता, तबतक मूढ़ लोगोंके जो व्रत, तप, संयम और मूलगुण हैं, उन्हें मोक्ष (का कारण) नहीं कहा जाता ॥ २९ ॥

जइ[1] णिम्मल अप्पा मुणइ[2] वय-संजम-संजुत्तु ।
तो लहु पावइ[3] सिद्धि-सुह इउ जिणणाहहँ उत्तु ॥ ३० ॥

[यदि निर्मलं आत्मानं जानाति व्रतसंयमसंयुक्तः ।
तर्हि लघु प्राप्नोति सिद्धिसुखं इति जिननाथस्य उक्तम् ॥]

पाठान्तर—१) झ–जो. २) अपझ–मुणई. ३) अ–तौ लहु पावै.

अर्थ—जिनेन्द्रदेवका कथन है कि यदि व्रत और संयमसे युक्त होकर जीव निर्मल आत्माको पहिचानता है, तो वह शीघ्र ही सिद्धि-सुखको पाता है ॥ ३० ॥

वउ तव संजमु[1] सीलु जिय ए सव्वइँ[2] अकयत्थु ।
जांव ण जाणइ इक्क परु सुद्धउ भाउ पवित्तु[3] ॥ ३१ ॥

[व्रतं तपः संयमः शीलं जीव एतानि सर्वाणि अकृतार्थानि ।
यावत् न ज्ञायते एकः परः शुद्धः भावः पवित्रः ॥]

पाठान्तर—१) अप–वयतवसंजमु सीलु, ब–वउ तवसंजमसीलु, झ–वउ तउ संजम सील. २) अ–ए सव्वै, ब–एउ सव्वुइ. ३) ब–जहि लब्भइ सिवपंथु.

अर्थ—जबतक जीवको एक परम शुद्ध पवित्र भावका ज्ञान नहीं होता, तबतक व्रत, तप, संयम और शील ये सब कुछ भी कार्यकारी नहीं होते ॥ ३१ ॥

पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ पावएँ णरय-णिवासु ।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ तो लब्भइ सिववासु ॥ ३२ ॥

[पुण्येन प्राप्नोति स्वर्गं जीवः पापेन नरकनिवासम् ॥
द्वे त्यक्त्वा आत्मानं जानाति ततः लभते शिववासम् ॥]

पाठान्तर—१) अप–पुण्णई, झ–पुण्णइ. २) अप–पावयें, ब–पावें, झ–पावय. ३) झ–छंडवि.

अर्थ—पुण्यसे जीव स्वर्ग पाता है, और पापसे नरकमें जाता है। जो इन दोनोंको (पुण्य और पापको) छोड़कर आत्माको जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥

वउ तउ संजमु सील जियो इउ सव्वइँ ववहारु ।
मोक्खहँ कारणु एक्कु मुणि जो तइलोयहँ सारु ॥ ३३ ॥

[व्रतं तपः संयमः शीलं जीव इति सर्वाणि व्यवहारः ।
मोक्षस्य कारणं एकं जानीहि यः त्रिलोकस्य सारः ॥]

पाठान्तर—१) अब–जिय. २) झ–इय. ३) अपझ–तइल्लोयहु.

अर्थ—व्रत, तप, संयम और शील ये सब व्यवहारसे ही माने जाते हैं। मोक्षका कारण तो एक ही समझना चाहिये, और वही तीनों लोकोंका सार है ॥ ३३ ॥

अप्पा अप्पइँ जो मुणइ जो परभाउ चएइ ।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु जिणवरु एमँ भणेइ ॥ ३४ ॥

[आत्मानं आत्मना यः जानाति यः परभावं त्यजति ।
स प्राप्नोति शिवपुरीगमनं जिनवरः एवं भणति ॥]

पाठान्तर—१) ब–अप्पे. २) बझ–परभाव. ३) अपझ–एउ.

अर्थ—जो आत्माको आत्मभावसे जानता है और जो परभावको छोड़ देता है, वह शिवपुरीको जाता है—ऐसा जिनवरने कहा है ॥ ३४ ॥

छह दव्वइँ जे जिण-कहिया णव पयत्थ जे तत्त ।
विवहारेण य उत्तिया ते जाणियहि पयत्तँ ॥ ३५ ॥

[षड् द्रव्याणि ये जिनकथिताः नव पदार्थाः यानि तत्त्वानि ॥
व्यवहारेण च उक्तानि तानि जानीहि प्रयतः (सन्) ॥]

पाठान्तर—१) अ–दव्व; पझ–दव्वह. २) ब–ववहारें जिणउत्तिया, ३) अ–जाणीयहि एयत्थ, प–जाणीयहि पयत्थ, झ–पयत्थु.

अर्थ—जिनभगवान्‌ने जो छह द्रव्य, नौ पदार्थ, और (सात) तत्त्व कहे हैं, वे व्यवहार-नयसे कहे हैं, उनका प्रयत्नशील होकर ज्ञान प्राप्त करो ॥ ३५ ॥

सव्व अचेयणं जाणि जिय एक्क सचेयणु सारु ।
जो जाणेविणु परम-मुणि लहु पावई भवपारु ॥ ३६ ॥

[सर्वं अचेतनं जानीहि जीव एकः सचेतनः सारः ।
यं ज्ञात्वा परममुनिः लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥]

पाठान्तर—१) झ–अचेयणि. २) ब–पावहि.

अर्थ—जितने भी पदार्थ हैं वे सब अचेतन हैं; चेतन तो केवल एक जीव ही है, और वही सारभूत है। उसको जानकर परममुनि शीघ्र ही संसारसे पार होता है ॥ ३६ ॥

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि छंडिवि सहु ववहारु ।
जिण-सामिउ एमई भणइ लहु पावई भवपारु ॥ ३७ ॥

[यदि निर्मलं आत्मानं जानासि त्यक्त्वा सर्वं व्यवहारम् ।
जिनस्वामी एवं भणति लघु प्राप्यते भवपारः ॥]

पाठान्तर—१) अ–एवई, प–एवइ, झ–सामीऊ एव. २) अपझ–पावहु.

अर्थ—सर्व व्यवहारको त्याग कर यदि तू निर्मल आत्माको जानेगा, तो तू संसारसे शीघ्र ही पार होगा—ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ॥ ३७ ॥

जीवाजीवहँ भेउ जो जाणइ तिं जाणियउ ।
मोक्खहँ कारण एउँ भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ॥ ३८ ॥

[जीवाजीवयोः भेदं यः जानाति तेन ज्ञातम् ।
मोक्षस्य कारणं एतत् भण्यते योगिन् योगिभिः भणितम् ॥]

पाठान्तर—१) अप–दोहरा ॥, झ–दोहा सोरठा. २) अप–जाणै ते, झ–जाणइ ते. ३) ब–कारणु एह.

अर्थ—जो जीवाजीवके भेदको जानता है, वही (सब कुछ) जानता है; तथा हे योगिन्! इसीको योगीजनोंने मोक्षका कारण कहा है ॥ ३८ ॥

केवल-णाण-सहाउ सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ ।
जइ चाहहि सिव-लाहु भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ॥ ३९ ॥

[केवलज्ञानस्वभावः स आत्मा (इति) जानीहि जीव त्वम् ।
यदि इच्छसि शिवलाभं भण्यते योगिन् योगिभिः भणितम् ॥]

पाठान्तर—१) ब–केवलणाणु सहाउ.

अर्थ—हे जीव! यदि तू मोक्ष पानेकी इच्छा करता है, तो तू केवलज्ञान-स्वभाव आत्माको पहिचान, ऐसा योगियोंने कहा है ॥ ३९ ॥

को(?) सुसमाहि करउ को अंचउ छोपु-अछोपु करिवि को वंचउ ।
हल सहि कलहु केण समाणउँ जहिँ कहिँ जोवउँ तहिँ अप्पाणउ ॥४०॥

[कः (अपि) सुसमाधिं करोतु कः अर्चयतु स्पर्शास्पर्शं कृत्वा कः वञ्चयतु ।
मैत्रीं सह कलहं केन समानयतु यत्र कुत्र पश्यतु तत्र आत्मा ॥]

पाठान्तर—१) झ–चौपइ ।. २) अपवझ–का सुसमाहि. ३) अपझ–कलहि. ४) व–सञाणउ. ५) पवझ–जहिं जहिं. ६) अप–जोवहु.

अर्थ—कौन तो समाधि करे, कौन अर्चन-पूजन करे, कौन स्पर्शास्पर्श करके वंचना करे, कौन किसके साथ मैत्री करे, और कौन किसके साथ कलह करे—जहाँ कहीं देखो वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होती है ॥ ४० ॥

तामॅ[1] कुतित्थइँ परिभमइ धुत्तिम ताम करेइ ।
गुरुहु पसाएँ[3] जाम णवि अप्पा-देउ मुणेइ[4] ॥ ४१ ॥

[तावत् कुतीर्थानि परिभ्रमति धूर्तत्वं तावत् करोति ।
गुरोः प्रसादेन यावत् नैव आत्मदेवं जानाति ॥]

पाठान्तर—१) झ–दोहा ।. २) अपझ–तामु (अन्यत्र ताम). ३) व–पसायहि. ४) अपझ–देहइं (देहहिं ?) देउ मुणेइ.

अर्थ—जवतक जीव गुरु-प्रसादसे आत्मदेवको नहीं जानता, तभीतक वह कुतीर्थोंमें भ्रमण करता है, और तभीतक वह धूर्तता करता ह ॥ ४१ ॥

तित्थहिँ[1] देवलि देउ णवि[2] इम सुइकेवलि-वुत्तु[3] ।
देहा-देवलि देउ जिणु एहउ जाणि णिरुत्तु ॥ ४२ ॥

[तीर्थेषु देवालये देवः नैव एवं श्रुतकेवल्युक्तम् ।
देहदेवालये देवः जिनः एतत् जानीहि निश्चितम् ॥]

पाठान्तर—१) अपव–तित्थइँ. २) व–देउ जि णवि. ३) व–इउ सुइकेवली.

अर्थ—श्रुतकेवलीने कहा है कि तीर्थोंमें देवालयोंमें देव नहीं हैं, जिनदेव तो देह-देवालयमें विराजमान हैं—इसे निश्चित समझो ॥ ४२ ॥

देहा-देवलि देउ जिणु जणु देवलिहिँ[1] णिएइ ।
हासउ महु पडिहाइ इहु[2] सिद्धे भिक्खँ[3] भमेइ ॥ ४३ ॥

[देहदेवालये देवः जिनः जनः देवालयेषु (तं) पश्यति ।
हास्यं मम प्रतिभाति इह सिद्धे (सति) भिक्षां भ्रमति ॥]

पाठान्तर—१) अ–जिणि देवालेहि णएइ, प–जिणि देवलिहि णएइ, झ–जिणदेवलिहि णएई. २) अ–परिहाइ हु, पझ–परिहोइ इहु. ३) अ–भक्ख, व–सिद्धा-भिक्ख, झ–सिद्धाभिक्ख.

अर्थ—जिनदेव देह-देवालयमें विराजमान हैं; परन्तु जीव (ईंट पत्थरोंके) देवालयोंमें उनके दर्शन करता है—यह मुझे कितना हास्यास्पद माळूम होता है। यह बात ऐसी ही है, जैसे कोई मनुष्य सिद्ध हो जानेपर भिक्षाके लिये भ्रमण करे ॥ ४३ ॥

मूढा देवलि देउ णवि णवि सिलि[1] लिप्पइ चित्ति ।
देहा-देवलि देउ जिणु सो बुज्झहि[2] समचित्ति ॥ ४४ ॥

[मूढ देवालये देवः नैव नैव शिलायां लेप्ये चित्रे ।
देहदेवालये देवः जिनः तं बुध्यस्व समचित्ते ॥]

पाठान्तर—१) अपव-शिल. २) अपम्र-उ (उ) च्चइ.

अर्थ—हे मूढ ! देव किसी देवालयमें विराजमान नहीं हैं, इसी तरह किसी पत्थर, लेप अथवा चित्रमें भी देव विराजमान नहीं । जिनदेव तो देह-देवालयमें रहते हैं—इस बातको तू समचित्तसे समझ ॥ ४४ ॥

तित्थइ देउलि देउ जिणु सव्वु वि कोइ भणेइ ।
देहा-देउलि जो मुणइ सो बुहु को वि हवेइ ॥ ४५ ॥

[तीर्थे देवकुले देवः जिनः (इति) सर्वः अपि कश्चित् भणति ।
देहदेवकुले यः जानाति स बुधः कः अपि भवति ॥]

पाठान्तर—१) य-सोव्वु (!). २) प-देहदेगल, य-देहदेउलि.

अर्थ—सब कोई कहते हैं कि जिनदेव तीर्थमें और देवालयमें विद्यमान हैं। परन्तु जो जिनदेवको देह-देवालयमें विराजमान समझता है ऐसा पंडित कोई विरला ही होता है ॥ ४५ ॥

जइ जर-मरण-करालियउ तो जिय धम्म करेहि ।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ जिम अजरामर होहि ॥ ४६ ॥

[यदि जरामरणकरालितः तर्हि जीव धर्मं कुरु ।
धर्मरसायनं पिब त्वं यथा अजरामरः भवसि ॥]

पाठान्तर—१) अप-करालिओ, म्र-करालिओ. २) अ-तो, म्र-ताउ.

अर्थ—हे जीव ! यदि तू जरा मरणसे भयभीत है तो धर्म कर, धर्मरसायनका पान कर; जिससे तू अजर अमर हो जाय ॥ ४६ ॥

धम्मु ण पढियइँ होइ धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ ।
धम्मु ण मढिय-पएसि धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ ॥ ४७ ॥

[धर्मः न पठितेन भवति धर्मः न पुस्तकपिच्छाभ्याम् ।
धर्मः न मठप्रदेशेन धर्मः न मस्तकलुञ्चितेन ॥]

पाठान्तर—१) पम्र-पढिया. २) प-पीछियइ, म्र-पिछयइ. ३) अपव-पुस्तकेषु द्वितीयचतुर्थपादयोः 'धम्मु' इति नास्ति ।.

अर्थ—पढ लेनेसे धर्म नहीं होता; पुस्तक और पिच्छीसे भी धर्म नहीं होता; किसी मठमें रहनेसे भी धर्म नहीं है; तथा केशलोंच करनेसे भी धर्म नहीं कहा जाता ॥ ४७ ॥

राय-रोस बे परिहरिवि जो अप्पाणि वसेइ ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ जो पंचम-गइ णेइ ॥ ४८ ॥

[रागरोषौ द्वौ परिहृत्य यः आत्मनि वसति ।
स धर्मः अपि जिनोक्तः यः पञ्चमगतिं नयति ॥]

पाठान्तर—१) अपम्र-परिहरइ. २) अपम्र-उत्तिओ. ३) अपम्र-देइ.

अर्थ—जो राग और द्वेष दोनोंको छोड़कर निज आत्मामें वास करना है, उसे ही जिनेन्द्रदेवने धर्म कहा है। वह धर्म पंचमगति (मोक्ष) को ले जाता है ॥ ४८ ॥

आउ गलइ णवि मणु गलइ णवि आसा हु गलेइ ।
मोहु फुरइ णवि अप्प-हिउ इम संसार भमेइ ॥ ४९ ॥

[आयुः गलति नैव मनः (मानः ?) गलति नैव आशा खलु गलति ।
मोहः स्फुरति नैव आत्महितं एवं संसारं भ्रमति ॥]

पाठान्तर—१) ब–गलेहु.

अर्थ—आयु गल जाती है, पर मन नहीं गलता, और न आशा ही है गलती। मोह स्फुरित होता है, परन्तु आत्महितका स्फुरण नहीं होता—इस तरह जीव संसारमें भ्रमण किया करता है ॥ ४९ ॥

जेहउ मणु विसयहँ रमइ तिसु जइ अप्प मुणेइ ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु लहु णिव्वाणु लहेइ ॥ ५० ॥

[यथा मनः विषयाणां रमते तथा यदि आत्मानं जानाति ।
योगी भणति भो योगिनः लघु निर्वाणं लभ्यते ॥]

पाठान्तर—१) अप–रमै. २) ह्म–तिम जे. ३) अपह्म–जोइउ भणइ रे जोइहु.

अर्थ—जिस तरह मन विषयोंमें रमण करता है, उस तरह यदि वह आत्माको जाननेमें रमण करे, तो हे योगिजनो ! योगी कहते हैं कि जीव शीघ्र ही निर्वाण पा जाय ॥५०॥

जेहउ जज्जरु णरय-घरु तेहउ बुज्झि सरीरु ।
अप्पा भावहिं णिम्मलउ लहु पावहि भवतीरु ॥ ५१ ॥

[यथा जर्जरं नरकगृहं तथा बुध्यस्व शरीरम् ।
आत्मानं भावय निर्मलं लघु प्राप्नोषि भवतीरम् ॥]

पाठान्तर—१) अपह्म–भावहु.

अर्थ—हे जीव, जैसे नरकवास सैकड़ों छिद्रोंसे जर्जरित है, उसी तरह शरीरको भी (मल मूत्र आदिसे) जर्जरित समझ। अतएव निर्मल आत्माकी भावना कर, तो शीघ्र ही संसारसे पार होगा ॥ ५१ ॥

धंधइ पडियउ सयलं जगि णवि अप्पा हु मुणंति ।
तहिँ कारणि एँ जीव फुडु ण हु णिव्वाणु लहंति ॥ ५२ ॥

[धान्धे (?) पतिताः सकलाः जगति नैव आत्मानं खलु जानन्ति ।
तस्मिन् कारणे (तेन कारणेन) एते जीवाः स्फुटं न खलु निर्वाणं लभन्ते ॥]

पाठान्तर—१) ब–सयलु. २) प–तिहि कारणिए, ह्म–तिहि कारणए.

अर्थ—सब लोग संसारमें अपने अपने धंधेमें फँस हुए हैं, और अपनी आत्माको नहीं पहिचानते। निश्चयसे इसी कारण ये जीव निर्वाणको नहीं पाते, यह स्पष्ट है ॥ ५२ ॥

सत्थ पढंतह ते वि जड अप्पा जे ण मुणंति ।
तहिँ[1] कारणि ऐ जीव फुडु ण हु णिव्वाणु लहंति ॥ ५३ ॥
[शास्त्रं पठन्तः ते अपि जडाः आत्मानं ये न जानन्ति ॥
तस्मिन् कारणे (तेन कारणेन) एते जीवाः स्फुटं न खलु निर्वाणं लभन्ते ॥]

पाठान्तर—१) अ-तिहिं कारणए, प-तिहि कारणि, झ-तिह कारणए.

अर्थ—जो शास्त्रोंको तो पढ़ लेते हैं, परन्तु आत्माको नहीं जानते, वे लोग भी जड़ ही हैं। तथा निश्चयसे इसी कारण ये जीव निर्वाणको नहीं पाते यह स्पष्ट है ॥ ५३ ॥

मणु-इंदिहि वि छोडियइ[1] (?) बुहु पुच्छियइ ण कोइ ।
रायहँ पसरु णिवारियइ सहजें[2] उपज्जइ सोइ ॥ ५४ ॥
[मनइन्द्रियेभ्यः अपि मुच्यते बुधः पृच्छयते न कः अपि ।
रागस्य प्रसरः निवार्यते सहजः उत्पद्यते स अपि ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-छोड्यइ, व-छोडियइ. २) पव-सहजि.

अर्थ—यदि पण्डित, मन और इन्द्रियोंसे छुटकारा पा जाय, तो उसे किसीसे कुछ पूँछनेकी ज़रूरत नहीं। यदि रागका प्रवाह रुक जाय, तो वह (आत्मभाव) सहज ही उत्पन्न हो जाता है ॥ ५४ ॥

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउं[1] अण्णु वि सहु ववहारु ।
चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ लहु पावहि[2] भवपारु ॥ ५५ ॥
[पुद्गलः अन्यः एव अन्यः जीवः अन्यः अपि सर्वः व्यवहारः ।
त्यज अपि पुद्गलं गृहाण जीवं लघु प्राप्नोपि भवपारम् ॥]

पाठान्तर—१) अ-अणु जियउ, प-अणु जीउ. २) अपझ-पावहु.

अर्थ—पुद्गल भिन्न है और जीव भिन्न है, तथा अन्य सब व्यवहार भिन्न है। अतएव पुद्गलको छोड़ और जीवको ग्रहण कर—इससे तू शीघ्र ही संसारसे पार होगा ॥ ५५ ॥

जे णवि मण्णहिँ[1] जीव फुडु जे णवि जीउ मुणंति ।
ते जिण-णाहहँ उत्तिया णउ[2] संसार मुचंति[3] ॥ ५६ ॥
[ये नैव मन्यन्ते जीवं स्फुटं ये नैव जीवं जानन्ति ।
ते जिननाथस्य उक्त्या न तु (नैव?) संसारात् मुच्यन्ते ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-मणहि. २) व-णउ णिव्वाणु लहंति. ३) अ-मुच्चंति.

अर्थ—जो जीवको स्पष्टरूपसे न समझते हैं, और जो उसे न पहिचानते हैं, वे संसारसे कभी छुटकारा नहीं पाते—ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ५६ ॥

रयण दीउ दिणयर दहिउ दुध्दु घीवं पाहाणु ।
सुण्णउ रूउँ फलिहउ अगिणि णव दिट्ठंता जाणुं ॥ ५७ ॥
[रत्नं दीपः दिनकरः दधि दुग्धं घृतं पाषाणः ।
सुवर्णं रूप्यं स्फटिकं अग्निः नव दृष्टान्तान् जानीहि ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-दियउ. २) अपब-घाउ. ३) प-सेणा,झ-सुण्ग. ४) अ-रूव, पझ-रूप. ५) व-जाणि.

अर्थ—रत्न, दीप, सूर्य, दही दूध घी, पाषाण, सोना, चांदी, स्फटिकमणि, और अग्नि ये (जीवके) नौ दृष्टान्त जानने चाहिये ॥ ५७ ॥

देहादिउं जो परु मुणइ जेहउ सुण्णु अयासु ।
सो लहु पावइ (?) बंभु परु केवलु करइ पयासु ॥ ५८ ॥

[देहादिकं यः परं जानाति यथा शून्यं आकाशम् ।
स लघु प्राप्नोति ब्रह्म परं केवलं करोति प्रकाशम् ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-देहादिक. २) अपवझ-पावहि.

अर्थ—जो शून्य आकाशकी तरह देह आदिको पर समझता है, वह शीघ्र ही परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है, और वह केवल प्रकाश करता है ॥ ५८ ॥

जेहउ सुद्धु अयासु जिय तेहउ अप्पा वुत्तु ।
आयासु वि जडु जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु ॥ ५९ ॥

[यादृक् शुद्धं आकाशं जीव तादृशः आत्मा उक्तः ।
आकाशं अपि जडं जानीहि जीव आत्मानं चैतन्यवन्तम् ॥]

पाठान्तर—१) अप-तेहो.

अर्थ—हे जीव ! जैसे आकाश शुद्ध है वैसे ही आत्मा भी शुद्ध कही गई है। दोनोंमें अन्तर केवल इतना ही है कि आकाश जड़ है और आत्मा चैतन्यलक्षणसे युक्त है ॥ ५९ ॥

णासग्गिँ[1] अब्भिंतरहँ जे जोवहिँ असरीरु ।
बाहुडि जम्मि ण संभवहिँ[2] पिवहिँ[3] ण जणणी-खीरु ॥६०॥

[नासाग्रेण अभ्यन्तरे (?) ये पश्यन्ति अशरीरम् ।
लज्जाकरे जन्मनि न संभवन्ति पिवन्ति न जननीक्षीरम् ॥]

पाठान्तर—१) अप-णासगि. २) अपझ-जम्म ण संभवइ. ३) व-पियहि.

अर्थ—जो नासिकापर दृष्टि रखकर अभ्यंतरमें अशरीरको (आत्माको) देखते हैं, वे इस लज्जाजनक जन्मको फिरसे धारण नहीं करते, और वे माताके दूधका पान नहीं करते ॥६०॥

असरीरु वि सुसरीरु मुणि इहु सरीरु जडु जाणि ।
मिच्छा-मोहु[1] परिच्चयहि मुत्ति णियं वि ण माणि[2] ॥ ६१ ॥

[अशरीरं अपि सु(स-)शरीरं जानीहि इदं शरीरं जडं जानीहि ।
मिथ्यामोहं परित्यज मूर्तिं निजां अपि न मन्यस्व ॥]

पाठान्तर—१) व-मिच्छामोहि. २) अपवझ-विगिमाणि.

अर्थ—अशरीर (आत्मा)को ही सुन्दर शरीर समझो, और इस शरीरको जड़ मानो; मिथ्यामोहका त्याग करो और अपने शरीरको भी अपना मत मानो ॥ ६१ ॥

अप्पइँ[1] अप्पु मुणंतयहँ किं णेहा फलु होइ ।
केवल-णाणु वि परिणवइ सासय-सुक्खु लहेइ ॥ ६२ ॥

[आत्मना आत्मानं जानतां किं न इह फलं भवति ।
केवलज्ञानं अपि परिणमति शाश्वतसुखं लभ्यते ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-अप्पय.

अर्थ—आत्माको आत्मासे जाननेमें यहाँ कौनसा फल नहीं मिलता ? और तो क्या इससे केवलज्ञान भी हो जाता है, और जीवको शाश्वत सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ६२ ॥

जे परभाव चएवि मुणि अप्पा अप्प मुणंति ।
केवल-णाण-सरूवं लइ (लहि?) ते संसारु मुचंति ॥ ६३ ॥

[ये परभावं त्यक्त्वा मुनयः आत्मना आत्मानं जानन्ति ।
केवलज्ञानस्वरूपं लात्वा (लब्ध्वा ?) ते संसारं मुञ्चन्ति ॥]

पाठान्तर—१) ब-सरुवि.

अर्थ—जो मुनि परभावका त्याग कर अपनी आत्मासे अपनी आत्माको पहिचानते हैं, वे केवलज्ञान प्राप्त कर संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

धण्णा ते भयवंत वुह जे परभाव चयंति ।
लोयालोय-पयासयरु अप्पा विमलं मुणंति ॥ ६४ ॥

[धन्याः ते भगवन्तः बुधाः ये परभावं त्यजन्ति ।
लोकालोकप्रकाशकरं आत्मानं विमलं जानन्ति ॥]

पाठान्तर—१) ब-धम्मा. २) ब-अप्पा अप्पु.

अर्थ—उन भगवान् पण्डितोंको धन्य हैं, जो परभावका त्याग करते हैं, और जो लोकालोक-प्रकाशक निर्मल आत्माको जानते हैं ॥ ६४ ॥

सागारु वि णागारु कु वि जो अप्पाणि वसेइ ।
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु जिणवरु एम भणेइ ॥ ६५ ॥

[सागारः अपि अनगारः कः अपि यः आत्मनि वसति ।
स लघु प्राप्नोति सिद्धिसुखं जिनवरः एवं भणति ॥]

पाठान्तर—१) अप-णागारु वि. २) प-सिद्धसुहु.

अर्थ—गृहस्थ हो या मुनि हो, जो कोई भी निज आत्मामें वास करता है, वह शीघ्र ही सिद्धिसुखको पाता है, ऐसा जिनभगवान्‌ने कहा है ॥ ६५ ॥

विरला जाणहिँ तत्तु वुहु विरला णिसुणहिँ तत्तु ।
विरला झायहिँ तत्तु जिय विरला धारहिँ तत्तु ॥ ६६ ॥

[विरलाः जानन्ति तत्त्वं बुधाः विरलाः निशृण्वन्ति तत्त्वम् ।
विरलाः ध्यायन्ति तत्त्वं जीव विरलाः धारयन्ति तत्त्वम् ॥]

पाठान्तर—१) ब-जाणइहिं. २) अपझ-बुहु. ३) अपझ-णिसुणहु.

अर्थ—विरले पण्डित लोग ही तत्त्वोंको समझते हैं, विरले ही तत्त्वोंको श्रवण करते हैं, विरले ही तत्त्वोंका ध्यान करते हैं, और विरले जीव ही तत्त्वोंको धारण करते हैं ॥ ६६ ॥

इहु परियण ण हु महुतणउ इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ ।
इम चिंतंतहँ किं करइ लहु संसारहँ छेउ ॥ ६७ ॥

[एष परिजनः न खलु मदीयः एष सुखदुःखयोः हेतुः ।
एवं चिन्तयतां किं क्रियते लघु संसारस्य छेदः ॥]

पाठान्तर—१) अझ–महतणो. प–महलणो. २) व–इउ चिंततउ किं करय.

अर्थ—यह कुटुम्ब परिवार निश्चयसे मेरा नहीं है, यह मात्र सुखदुःखका ही हेतु है—इस प्रकार विचार करनेसे शीघ्र ही संसारका नाश किया जा सकता है ॥ ६७ ॥

इंद-फणिंद-णरिंदय वि जीवहँ सरणु ण होंति ।
असरणु जाणिवि मुणि-धवला अप्पा अप्प मुणंति ॥ ६८ ॥

[इन्द्रफणीन्द्रनरेन्द्राः अपि जीवानां शरणं न भवन्ति ।
अशरणं ज्ञात्वा मुनिधवलाः आत्मना आत्मानं जानन्ति ॥]

पाठान्तर—१) अझ–णरिंद ण वि. प–णरिंद वि. २) अप–जाणवि.

अर्थ—इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी जीवोंको शरणभूत नहीं हो सकते; इस तरह अपनेको शरणरहित जानकर उत्तम मुनि निज आत्मासे निज आत्माको जानते हैं ॥ ६८ ॥

इक उपज्जइ मरइ कु वि दुहु सुहु भुंजइ इक्कु ।
णरयहँ जाइ वि इक जिउ तहँ णिव्वाणहँ इक्कु ॥ ६९ ॥

[एकः उत्पद्यते म्रियते एकः अपि दुःखं सुखं भुनक्ति एकः ।
नरकेभ्यः याति अपि एकः जीवः तथा निर्वाणाय एकः ॥]

पाठान्तर—१) व–उप्पनउ. २) अ–इक मरइ इक वि, प–मरइ इक वि, व–मरइक वि. ३) व–तहिं.

अर्थ—जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है और वह अकेला ही सुखदुःखका उपभोग करता है। वह नरकमें भी अकेला ही जाता है और निर्वाणको भी वह अकेला ही प्राप्त करता है ॥ ६९ ॥

एक्कुलउ जइ जाइसिहि तो परभाव चएहि ।
अप्पा झायहि णाणमउ लहु सिव-सुक्खु लहेहि ॥ ७० ॥

[एकाकी यदि यास्यसि तर्हि परभावं त्यज ।
आत्मानं ध्यायस्व ज्ञानमयं लघु शिवसुखं लभसे ॥]

पाठान्तर—१) अप–इक्कलउ, झ–इक्कलउ. २) प–जइसहि. ३) पवझ–सिवसुख.

अर्थ—हे जीव ! यदि तू अकेला ही है तो परभावका त्याग कर और आत्माका ध्यान कर, जिससे तू शीघ्र ही ज्ञानमय मोक्षसुखको प्राप्त कर सके ॥ ७० ॥

जो पाउ वि सो पाउ मुणि सव्वु इ को वि मुणेइ ।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ सो बुहु (?) को वि हवेइ ॥७१॥

[यत् पापं अपि तत् पापं जानाति (?) सर्वः इति कः अपि जानाति ।
यः पुण्यं अपि पापं इति भणति स बुधः कः अपि भवति ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–मणि. २) अपझ–सव्वु (सव्वु) इको वि. ३) अपवझ–बहु.

अर्थ—जो पाप है उसको जो पाप जानता है, यह तो सब कोई जानता है। परन्तु जो पुण्यको भी पाप कहता है, ऐसा पंडित कोई विरला ही होता है ॥ ७१ ॥

जह लोहम्मियं णियड बुह तह सुण्णम्मिय जाणि।
जे सुहु असुह परिच्चयहिं ते वि हवंति हु णाणि ॥७२॥

[यथा लोहमयं निगडं बुध तथा सुवर्णमयं जानीहि ।
ये शुभं अशुभं परित्यजन्ति ते अपि भवन्ति खलु ज्ञानिनः ॥]

पाठान्तर—१) अ–लोहम्मय. २) ब–णिलय (णियल ?). ३) अपझ–सो सुह. ४) अपझ–हवंति ण.

अर्थ—हे पण्डित ! जैसे लोहेकी साँकलको तू साँकल समझता है उसी तरह तू सोनेकी साँकलको भी साँकल ही समझ। जो शुभ अशुभ दोनों भावोंका परित्याग कर देते हैं, निश्चयसे वे ही ज्ञानी होते हैं ॥ ७२ ॥

जइया मणु णिग्गंथु जिय तइया तुहुँ णिग्गंथु ।
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय तो लब्भइ सिवपंथु ॥ ७३ ॥

[यदा मनः निर्ग्रन्थः जीव तदा त्वं निर्ग्रन्थः ।
यदा त्वं निर्ग्रन्थः जीव ततः लभ्यते शिवपन्थाः ॥]

पाठान्तर—अपझ–तौ.

अर्थ—हे जीव ! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ हो गया तो तू भी निर्ग्रन्थ हो गया; और जब तू निर्ग्रन्थ हो गया, तो उससे मोक्षमार्ग मिल जाता है ॥ ७३ ॥

जं वडमज्झहँ बीउ फुडु बीयहं वडु वि हु जाणु।
तं देहहँ देउ वि मुणहि जो तइलोय-पहाणु ॥ ७४ ॥

[यद् वटमध्ये बीजं स्फुटं बीजे वटं अपि खलु जानीहि ।
तं देहे देवं अपि जानीहि यः त्रिलोकप्रधानः ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–बीज. २) अपझ–वड विह. ३) अप–देउ मुणहि.

अर्थ—जैसे वड़के वृक्षमें बीज स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही बीजमें भी वड़वृक्ष रहता है। इसी तरह देहमें भी उस देवको विराजमान समझो, जो तीनों लोकोंमें मुख्य है ॥७४॥

जो जिण सो हउँ सो जि हउँ एहउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥ ७५ ॥

[यः जिनः स अहं स एव अहं एतद् भावय निर्भ्रान्तम् ।
मोक्षस्य कारणं योगिन् अन्यः न तन्त्रः न मन्त्रः ॥]

पाठान्तर—१) अ–णिरु.

अर्थ—जो जिनदेव हैं वह मैं हूँ, वही मैं हूँ—इसकी भ्रान्तिरहित होकर भावना कर। हे योगिन् ! मोक्षका कारण कोई अन्य मन्त्र तन्त्र नहीं है ॥ ७५ ॥

बे ते चउ पंच वि णवहँ सत्तहँ छह पंचाहँ ।
चउगुण-सहियउ सो मुणह एयइँ लक्खण जाहँ ॥ ७६ ॥

[द्वित्रिचतुःपञ्चापि नवानां सप्तानां षट् पञ्चानाम् ।
चतुर्गुणसहितं तं जानीहि एतानि लक्षणानि यस्य ॥]

पाठान्तर—१) अप-सहियो. २) अप-एहो, झ-एहउ.

अर्थ—दो, तीन, चार, पाँच, नौ, सात, छह, पाँच, और चार गुण, ये (परमात्माके) लक्षण समझने चाहिये ॥ ७६ ॥

बे छंडिवि[1] बे-गुण-सहिउ जो अप्पाणि वसेइ[2] ।
जिणु सामिउ एमइँ[3] भणइ लहु णिव्वाणु लहेइ[4] ॥ ७७ ॥

[द्वौ त्यक्त्वा द्विगुणसहितः यः आत्मनि वसति ।
जिनः स्वामी एवं भणति लघु निर्वाणं लभते ॥]

पाठान्तर—१) अप-छंडवि. २) अपझ-विसेइ. ३) अपझ-जिणसामी एवं. ४) व-लहेहि.

अर्थ—जो दोका (राग द्वेप) परित्याग कर, दो गुणोंसे (सम्यग्ज्ञान दर्शन) युक्त होकर आत्मामें निवास करता है, वह शीघ्र ही निर्वाण पाता है, ऐसा जिनेन्द्रभगवान्‌ने कहा है ॥७७॥

तिहिँ रहियउ[1] तिहिँ गुण-सहिउ जो अप्पाणिं[2] वसेइ ।
सो सासय-सुहँ-भायणु[3] वि जिणवरु एम भणेइ ॥ ७८ ॥

[त्रिभिः रहितः त्रिभिः गुणसहितः यः आत्मनि वसति ।
स शाश्वतसुखभाजनं अपि जिनवरः एवं भणति ॥]

पाठान्तर—१) अप-रहियो, झ-रहिउ तिह. २) व-अप्पाण. ३) व-सुहु भायणु.

अर्थ—जो तीनसे (राग द्वेप मोह) रहित होकर तीन गुणोंसे (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र) युक्त होता हुआ आत्मामें निवास करता है, वह शाश्वत सुखका पात्र होता है, ऐसा जिनदेवने कहा है ॥ ७८ ॥

चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ चउ-गुण-सहियउ[1] वुत्तु ।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ जिम परु[2] होहि पवित्तु ॥ ७९ ॥

[चतुःकषायसंज्ञारहितः चतुर्गुणसहितः उक्तः ।
स आत्मा (इति) जानीहि जीव त्वं यथा परः भवसि पवित्रः ॥]

पाठान्तर—१) अप-सहियो, झ-सहिउ. २) अपझ-पर.

अर्थ—हे जीव ! जो चार कपायों और चार संज्ञासे रहित होकर चार गुणोंसे (अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य) सहित होता है, उसे तू आत्मा समझ; जिससे तू परम पवित्र हो सके ॥ ७९ ॥

बे-पंचहँ रहियउ मुणहि बे-पंचहँ संजुत्तु ।
बे-पंचहँ जो[1] गुणसहिउ सो अप्पा णिरु[2] वुत्तु ॥ ८० ॥

[द्विपञ्चानां (-पञ्चभिः?) रहितः(इति) जानीहि द्विपञ्चानां संयुक्तः ।
द्विपञ्चानां यः गुणसहितः स आत्मा निश्चयेन उक्तः ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-सो. २) अपझ-णर.

अर्थ—जो दससे रहित, दससे सहित और दस गुणोंसे सहित है, उसे निश्चयसे आत्मा कहा है ॥ ८० ॥

अप्पा दंसणु णाणु मुणि अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु[1] सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि[2] ॥ ८१ ॥

[आत्मानं दर्शनं ज्ञानं जानीहि आत्मानं चरणं विजानीहि।
आत्मानं संयमं शीलं तपः आत्मानं प्रत्याख्यानम् ॥]

पाठान्तर—१) अझ–संयम. २) अ–पच्चकोणु, व–पच्चष्पाणु, प–पच्चक्खाण, झ–पचखाणि.

अर्थ—आत्माको ही दर्शन और ज्ञान समझो; आत्मा ही चारित्र है, और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्माको ही मानो ॥ ८१ ॥

जो परियाणइ अप्प परु सो[1] परु चयइ[2] णिभंतु।
सो सण्णासु मुणेहि तुहुँ केवल-णाणिं[3] उत्तु ॥ ८२ ॥

[यः परिजानाति आत्मानं स परं त्यजति निर्भ्रान्तम्।
तत् सन्न्यासं जानीहि त्वं केवलज्ञानिना उक्तं ॥]

पाठान्तर—१) व–जो. २) अपझ–चयहि. ३) अपझ–केवलणाणिय.

अर्थ—जो निजको और परको जान लेता है वह भ्रान्तिरहित होकर परका त्याग कर देता है। हे जीव! तू उसे ही सन्यास समझ—ऐसा केवलज्ञानीने कहा है ॥ ८२ ॥

रयणत्तय-संजुत्त जिउ उत्तिमु[1] तित्थु[1] पवित्तु[2]।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥ ८३[3] ॥

[रत्नत्रयसंयुक्तः जीवः उत्तमं तीर्थं पवित्रम्।
मोक्षस्य कारणं योगिन् अन्यः न तन्त्रः न मन्त्रः ॥]

पाठान्तर—१) व–उत्तम तित्थ. २) अपझ–पउत्तु. ३) अपझ–८४.

अर्थ—हे योगिन्! रत्नत्रययुक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है, और वही मोक्षका कारण है। अन्य कुछ मन्त्र तन्त्र मोक्षका कारण नहीं ॥ ८३ ॥

दंसणु जं[1] पिच्छियइ बुह अप्पा विमल महंतु[2]।
पुणु पुणु अप्पा भावियए[3] सो चारित्त पवित्तु ॥ ८४[4] ॥

[दर्शनं यत् प्रेक्ष्यते बुधः (बोधः) आत्मा विमलः महान्।
पुनः पुनर् आत्मा भाव्यते तत् चारित्रं पवित्रम् ॥]

पाठान्तर—१) व–जहिं. २) व–एहु णिभंतु. ३) अप–भावियइए, व–झाइयइ, झ–भावियइ. ४) अझ–८३.

अर्थ—जिसके द्वारा देखा जाता है वह दर्शन है, जो निर्मल महान् आत्मा है वह ज्ञान है, तथा आत्माकी जो पुनः पुनः भावना की जाती है वह पवित्र चारित्र है ॥ ८४ ॥

जहिँ अप्पा तहिँ[1] सयल-गुण केवलि[2] एम भणंति।
तिहिँ कारणएँ[3] जोईं फुडु अप्पा विमलु मुणंति ॥ ८५ ॥

[यत्र आत्मा तत्र सकलगुणाः केवलिनः एवं भणन्ति।
तेन (?) कारणेन योगिनः स्फुटं आत्मानं विमलं जानन्ति ॥]

पाठान्तर—१) अपद्म–तिहि. २) अद्म–केवल. ३) व–तहि कारणिए. ४) अपद्म–जीव.

अर्थ—जहाँ आत्मा है वहाँ समस्त गुण हैं—ऐसा केवलियोंने कहा है। इसलिये योगी लोग निश्चयसे निर्मल आत्माको पहिचानते हैं ॥ ८५ ॥

एक्कलउं इंदिय-रहियउं मण-वय-काय-ति-सुद्धि ।
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥ ८६ ॥

[एकाकी इन्द्रियरहितः मनोवाक्कायत्रिशुद्ध्या ।
आत्मन् आत्मानं जानीहि त्वं लघु प्राप्नोपि शिवसिद्धिम् ॥]

पाठान्तर—१) अपद्म–इकलउ. २) घद्म–रहिउ. ३) व–सुधि. ४) अपद्म–मुणेइ. ५) अपद्म–पावहु. ६) अपद्म–सुद्धि.

अर्थ—हे आत्मन्! तू एकाकी, इन्द्रियरहित और मन वचन कायकी शुद्धिसे आत्माको जान; उससे तू शीघ्र ही मोक्षसिद्धिको प्राप्त करेगी ॥ ८६ ॥

जइ बद्धउं मुक्कउ मुणहि तो बंधियहि णिभंतु ।
सहज-सरूवइँ जइ रमहि तो पावहि सिव सन्तु ॥ ८७ ॥

[यदि बद्धं मुक्तं मन्यसे ततः बध्यसे निभ्रान्तम् ।
सहजस्वरूपे यदि रमसे ततः प्राप्नोपि शिवं शान्तम् ॥]

पाठान्तर—१)अपद्म–बद्धो. २) व–बंधिहि. ३) व–सरूविं. ४) अ–रमइहि, पवद्म–रमइ.

अर्थ—यदि तू बद्धको मुक्त समझेगा तो निश्चयसे तू बँधेगा। तथा यदि तू सहज-स्वरूपमें रमण करेगा तो शान्त निर्वाणको पावेगा ॥ ८७ ॥

सम्माइट्ठी-जीवडहँ दुग्गइ-गमणु ण होइ ।
जइ जाइ वि तो दोसु णवि पुव्व-किउं खवणेइँ ॥ ८८ ॥

[सम्यग्दृष्टिजीवस्य दुर्गतिगमनं न भवति ।
यदि याति अपि तर्हि (ततः?) दोषः नैव पूर्वकृतं क्षपयति ॥]

पाठान्तर—१) व–जाइसि. २) व–पुव्वुकिउ, द्म–पुव्वकियउ. ३) अपद्म–खउणेइ.

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव कुगतियोंमें नहीं जाता। यदि कदाचित् वह जाता भी है तो इसमें सम्यक्त्वका दोप नहीं। इससे वह पूर्वकृत कर्मका ही क्षय करता है ॥ ८८ ॥

अप्प-सरूवहँ (-सरूवइ?) जो रमइ छंडिवि सहु ववहारु ।
सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइँ भवपारु ॥ ८९ ॥

[आत्मस्वरूपे यः रमते त्यक्त्वा सर्वं व्यवहारम् ।
स सम्यग्दृष्टिः भवति लघु प्राप्नोति भवपारम् ॥]

पाठान्तर—१) अपद्म–जइ. २) अपद्म–छंडवि. ३) अपद्म–पावहु, व–पावहि.

अर्थ—जो सर्व व्यवहारको छोड़कर आत्मस्वरूपमें रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव है, और वह शीघ्र ही संसारसे पार हो जाता है ॥ ८९ ॥

जो सम्मत्त-पहाण बुहु सो तइलोय-पहाणु ।
केवल-णाण वि लहु लहइ सासय-सुक्ख-णिहाणु ॥ ९० ॥

[यः सम्यक्त्वप्रधानः बुधः स त्रिलोकप्रधानः ।
केवलज्ञानमपि लघु लभते शाश्वतसौख्यनिधानम् ॥]

पाठान्तर—१) व-सासइ सुवल होइ (!). २) अपझ-९१.

अर्थ—जिसके सम्यक्त्वका प्राधान्य है वही पण्डित है और वही त्रिलोकमें प्रधान है। वह जीव शाश्वत सुखके निधान केवलज्ञानको भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥ ९० ॥

अजरु अमरु गुण-गण-णिलउ जहि अप्पा थिरु ठाइ[1] ।
सो कम्मेहिँ ण बंधियउ[2] संचिय-पु[3]व्वँ विलाइ ॥ ९१[4] ॥

[अजरः अमरः गुणगणनिलयः यत्र आत्मा स्थिरः तिष्ठति ।
स कर्मभिः न बद्धः संचितपूर्वं विलीयते ॥]

पाठान्तर—१) व-थिर हाइ, झ-थिर थाइ. २) अ-ण वि बंधियउ, झ-कम्महिं ण वि बंधियउ, व-ण परिणमइ ३) व-संचउ पुव्व. ४) अपझ-९०.

अर्थ—जहाँ अजर अमर तथा गुणोंकी आगारभूत आत्मा स्थिर हो जाती है, वहाँ जीव कर्मोंसे बद्ध नहीं होता, और वहाँ पूर्वमें संचित किये हुए कर्मोंका ही नाश होता है ॥ ९१ ॥

जह सलिलेण ण लिप्पियइ[1] कमलणि-पत्त कया वि[2] ।
तह कम्मेहिँ[3] ण लिप्पियइ[4] जइ रइ[5] अप्प-सहावि ॥ ९२ ॥

[यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्रं कदा अपि ।
तथा कर्मभिः न लिप्यते यदि रतिः आत्मस्वभावे ॥]

पाठान्तर—१) अप-लिप्पयइ, झ-लिप्पइ. २) अपझ-कहा वि. ३) अपझ-कम्मेण. ४) अप-लिप्पयइ, झ-लिप्पइ. ५) अपझ-जह रहइ, व-जह.

अर्थ—जिस तरह कमलिनीका पत्र कभी भी जलसे लिप्त नहीं होता, उसी तरह यदि आत्मस्वभावमें रति हो, तो जीव कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ९२ ॥

जो सम-सुक्ख-णिलीणु बुहु पुण पुण अप्पु मुणेइ ।
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु लहु णिव्वाणु लहेइ[1] ॥९३॥

[यः शमसौख्यनिलीनः बुधः पुनः पुनः आत्मानं जानाति ।
कर्मक्षयं कृत्वा स अपि स्फुटं लघु निर्वाणं लभते ॥]

पाठान्तर—१) अपझ-लहेवि.

अर्थ—जो शम और सुखमें लीन हुआ पण्डित वारवार आत्माको जानता है, वह निश्चय ही कर्मोंका क्षयकर शीघ्र ही निर्वाण पाता है ॥ ९३ ॥

पुरिसायार-पमाणु जिय अप्पा एहु पवित्तु[1] ।
जोइज्जइ गुण-गण-णिलउ[2] णिम्मल-तेय-फुरंतु[3] ॥ ९४ ॥

[पुरुषाकारप्रमाणः जीव आत्मा एष पवित्रः ।
दृश्यते गुणगणनिलयः निर्मलतेजःस्फुरन् ॥]

पाठान्तर—१) अप-य बंधु, व-पउत्तु. २) अपझ-गुणणिम्मलउ. ३) अपझ-फुरंति.

अर्थ—हे जीव ! पुरुषाकार यह आत्मा पवित्र है, यह गुणोंकी राशि है और यह निर्मल तेजको स्फुरित करती हुई दिखाई देती है ॥ ९४ ॥

जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ असुइ-सरीर-विभिन्नु ।
सो जाणइ सत्थइँ सयलँ सासय-सुक्खहँ लीणु ॥ ९५ ॥

[यः आत्मानं शुद्धं अपि जानाति अशुचिशरीरविभिन्नम् ।
स जानाति शास्त्राणि सकलानि शाश्वतसौख्ये(?) लीनः ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–सत्थ य सयल.

अर्थ—जो शुद्ध आत्माको अशुचि शरीरसे भिन्न समझता है, वह शाश्वत सुखमें लीन होकर समस्त शास्त्रोंको जान जाता है ॥ ९५ ॥

जो णवि जाणइ अप्पु परु णवि परभाउ चएइ ।
सो जाणउ सत्थइँ सयलँ ण हु सिवसुक्खु लहेइ ॥ ९६ ॥

[यः नैव जानाति आत्मानं परं नैव परभावं त्यजति ।
स जानातु शास्त्राणि सकलानि न खलु शिवसौख्यं लभते ॥]

पाठान्तर—१) व–परभाव. २) अप–चएवि, झ–चहेवि. ३) व–जाणइ. ४) अपझ–सत्थ य सयल. ५) अपझ–लहेवि.

अर्थ—जो न तो परमात्माको जानता है, और न परभावका त्याग ही करता है, वह भले ही समस्त शास्त्रोंको जान जाय, परन्तु वह मोक्षसुखको प्राप्त नहीं करता ॥ ९६ ॥

वज्जिय सयल-वियप्पहँ परम-समाहि लहंति ।
जं विंदहिँ साणंदु क वि सो सिव-सुक्ख भणंति ॥ ९७ ॥

[वर्जितं सकलविकल्पेन परमसमाधिं लभन्ते ।
यद् विन्दन्ति सानन्दं किं अपि तत् शिवसौख्यं भणन्ति ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–वियप्पह. २) अ–विदवि, प–विदादि, झ–वेददि. ३) अ–साणंद क्कुवि, प–साणंद कु वि, झ–साणंद कुड.

अर्थ—जो समस्त विकल्पोंसे रहित होकर परम समाधिको प्राप्त करते हैं, वे आनन्दका अनुभव करते हैं, वह मोक्षसुख कहा जाता है ॥ ९७ ॥

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह रूवत्थु वि जिण-उत्तु ।
रूवातीतु मुणेहि लहु जिम परु होहि पवित्तु ॥ ९८ ॥

[यत् पिण्डस्थं पदस्थं बुध रूपस्थं अपि जिनोक्तम् ।
रूपातीतं जानीहि लघु यथा परः भवासि पवित्रः ॥]

पाठान्तर—१) प–बुहा, व–बहु. २) अपझ–मुणेहु.

अर्थ—हे बुध ! जिनभगवान्‌के कहे हुए पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानको समझ; जिससे तू शीघ्र ही परम पवित्र हो सके ॥ ९८ ॥

सव्वे जीवा णाणमया जो सम-भाव मुणेइ ।
सो सामाइउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ ॥ ९९ ॥

[सर्वे जीवाः ज्ञानमयाः (इति) यः समभावः ज्ञायते ।
तत् सामायिकं जानीहि स्फुटं जिनवरः एवं भणति ॥]

पाठान्तर—१) अझ–णाणमय.

अर्थ—समस्त जीव ज्ञानमय हैं, इस प्रकार जो समभाव है, उसे निश्चयसे सामायिक समझो, ऐसा जिनभगवान्‌ने कहा है ॥ ९९ ॥

राय-रोस बे परिहरिवि जो समभाउ मुणेइ ।
सो सामाइउ जाणि फुडु केवलि एम भणेइ ॥ १०० ॥

[राग-रोषौ द्वौ परिहृत्य यः समभावः मन्यते ।
तत् सामायिकं जानीहि स्फुटं जिनवरः एवं भणति ॥]

पाठान्तर—१) अप–वि. २) अपझ–परिहरवि.

अर्थ—राग और द्वेष इन दोनोंको छोड़कर जो समभाव होता है, उसे निश्चयसे सामायिक समझो ऐसा जिनभगवान्‌ने कहा है ॥ १०० ॥

हिंसादिउ-परिहारु करि जो अप्पा हु ठवेइ ।
सो वियऊं चारित्तु मुणि जो पंचम-गइ णेइ ॥ १०१ ॥

[हिंसादिकपरिहारं कृत्वा यः आत्मानं खलु स्थापयति ।
तद् द्वितीयं चारित्रं जानीहि यत् पञ्चमगतिं नयति ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–हिंसादिक. २) पव–बियउ, झ–विउ. ३) व–लेइ.

अर्थ—हिंसादिकका त्याग कर जो आत्माको स्थिर करता है, उसे दूसरा चारित्र (छेदोपस्थापना) समझो—यह पंचमगतिको ले जानेवाला है ॥ १०१ ॥

मिच्छादिउ जो परिहरणु सम्मदंसण-सुद्धि ।
सो परिहार-विसुद्धि मुणि लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥ १०२ ॥

[मिथ्यादेः (?) यत् परिहरणं सम्यग्दर्शनशुद्धिः ।
तां परिहारविशुद्धिं जानीहि लघु प्राप्नोषि शिवसिद्धिम् ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–मिच्छादिक, व–मिच्छादिकु (?). २ अपझ–सिवसुद्धि.

अर्थ—मिथ्यात्व आदिके परिहारसे जो सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि होती है, उसे परिहारविशुद्धि समझो, उससे जीव शीघ्र ही मोक्षसिद्धिको प्राप्त करता है ॥ १०२ ॥

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ जो सुहुमु वि परिणामु ॥
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि सो सासय-सुह-धामु ॥ १०३ ॥

[सूक्ष्मस्य लोभस्य यः विलयः यः सूक्ष्मः अपि परिणामः ।
तत् सूक्ष्मं अपि चारित्रं जानीहि तत् शाश्वतसुखधाम ॥]

पाठान्तर—१) व–सुहुमुहं. २) अप–विलओ (विलयो ?). ३) अपझ–सुहमु हवे परिणामु.

अर्थ—सूक्ष्म लोभका नाश होनेसे जो सूक्ष्म परिणामोंका अवशेष रह जाना है, वह सूक्ष्मचारित्र है; वह शाश्वत सुखका स्थान है ॥ १०३ ॥

अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु सो आयरिउ वियाणि ।
सो उवझायउ सो जि मुणि णिच्छइँ अप्पा जाणि ॥ १०४ ॥

[अर्हन् अपि स सिद्धः स्फुटं स आचार्यः (इति) विजानीहि ।
स उपाध्यायः स एव मुनिः निश्चयेन आत्मा (इति) जानीहि ॥]

पाठान्तर—१) झ–अरिहंतु. २) अप–सो उज्झाउ वि, झ–सो उज्झावो.

अर्थ—निश्चयनयसे आत्मा ही अर्हत् है, वही निश्चयसे सिद्ध है, और वही आचार्य है, और उसे ही उपाध्याय तथा मुनि समझना चाहिये ॥ १०४ ॥

सो सिउ संकरु विण्हु सो सो रुद्द वि सो बुद्धु ।
सो जिणु ईसरु बंभु सो सो अणंतु सो[1] सिद्धु ॥ १०५ ॥

[स शिवः शङ्करः विष्णुः स स रुद्रः अपि स बुद्धः ।
स जिनः ईश्वरः ब्रह्मा स स अनन्तः स सिद्धः ॥]

पाठान्तर—१) अपझ–फुडु.

अर्थ—वही शिव है, वही शंकर है, वही विष्णु है, वही रुद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही अनन्त है और सिद्ध भी उसे ही कहना चाहिये ॥१०५॥

एव हिँ[1] लक्खणं[2]-लक्खियउ जो परु णिक्कलु देउ ।
देहहँ मज्झहिँ[3] सो वसइ तासु ण विज्जई[4] भेउ ॥ १०६ ॥

[एवं हि लक्षणलक्षितः यः परः निष्कलः देवः
देहस्य मध्ये स वसति तयोः न विद्यते भेदः ॥]

पाठान्तर—१) अप–एयहि, झ–एहि य. २) व–लक्खणि. ३) व–देहहिं मज्झिहिं. ४) व–किज्जइ.

अर्थ—इन लक्षणोंसे युक्त परम निष्कल देव जो देहमें निवास करता है, उसमें और आत्मामें कोई भी भेद नहीं है ॥ १०६ ॥

जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिँ[1] जे सिज्झहि जिण-उत्तु ।
अप्पा-दंसणिँ[2] ते वि फुडु एहउँ[3] जाणि णिभंतु ॥ १०७ ॥

[ये सिद्धाः ये सेत्स्यन्ति ये सिध्यन्ति जिनोक्तम् ।
आत्मदर्शनेन ते अपि स्फुटं एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम् ॥]

पाठान्तर—१) अप–सिज्झहहिं, झ–सिज्झसिहिं. २) अपझ–दंसण. ३) अपझ–एहो.

अर्थ—जो सिद्ध हो चुके हैं, भविष्यमें होंगे और वर्तमानमें होते हैं, वे सब निश्चयसे आत्मदर्शनसे ही सिद्ध हुए हैं—यह भ्रान्तिरहित समझो ॥ १०७ ॥

संसारह भय-भीयएणं[1] जोगिचंदे[2]-मुणिएण ।
अप्पा-संबोहण कया दोहा इक्क-मणेणँ[3] ॥ १०८ ॥

[संसारस्य भयभीतेन योगिचन्द्रमुनिना ।
आत्मसंबोधनाय कृतानि दोहकानि एकमनसा ॥]

पाठान्तर—१) व–संसारूभयभीतेन, झ–भयभीवएह. २) अप–जोगचंद, व–योगचंद. ३) व–कव्वमिसेण.

अर्थ—संसारके दुःखोंसे भयभीत ऐसे योगीन्द्रदेव मुनिने आत्मसंबोधनके लिये एकाग्रमनसे इन दोहोंकी रचना की है ॥ १०८ ॥

योगसारदोहादीनां वर्णानुक्रमसूची

प्रकाशक—मणीलाल, रेवाशंकर जगजीवन जौहरी,
ऑ० व्यवस्थापक—परमश्रुतप्रभावकमंडल, खाराकुवा जौहरीबाजार, बम्बई नं. २
मुद्रक—रघुनाथ दिपाजी देसाई, न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस, केलेवाडी, बम्बई नं. ४

श्रीरायचन्द्रजैनशास्त्रमालाके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची।

१ **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**—श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल और पं० नाथूरामजी प्रेमीकृत सरल और विस्तृत भाषाटीका। इसमें श्रावकाचार और अहिंसाके स्वरूपका विशद वर्णन है। मूल्य सजिल्दका १।)

२ **पंचास्तिकाय**—श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत मूल गाथायें, अमृतचन्द्राचार्यकृत तत्त्वदीपिका, जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति ये दो संस्कृतटीकायें, और स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत भाषाटीका, जीव अजीवादि पाँच अस्तिकायोंका वर्णन है। मूल्य सजिल्दका २)

३ **ज्ञानार्णव**—श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत मूल, स्व० पं० जयचन्द्रजीकृत भाषाटीका, योगके विषयका अपूर्व ग्रंथ है। महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रस्तावना भी है। मूल्य सजिल्दका ४)

४ **सप्तभंगीतरंगिणी**—श्रीविमलदासकृत मूल और स्व० पं० ठाकुरप्रसादजी शर्मा व्याकरणाचार्यकृत भाषाटीका। नव्यन्यायका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। मूल्य १)

५ **बृहद्द्रव्यसंग्रह**—श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत गाथायें, श्रीब्रह्मदेवकृत संस्कृतटीका, और पं० जवाहरलालजी शास्त्रीकृत भाषाटीका। षट् द्रव्योंका वर्णन है। सजिल्दका मूल्य २।)

६ **गोम्मटसार-कर्मकांड**—श्रीनेमिचन्द्राचार्यकृत गाथायें, और स्व० पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृतछाया और भाषाटीका सहित। मूल्य सजिल्दका २॥)

७ **गोम्मटसार—जीवकांड**—श्रीनेमिचन्द्राचार्यकृत मूल गाथायें, और पं० खूबचन्द्रजी सिद्धांतशास्त्रीकृत संस्कृतछाया और भाषाटीका सहित। मू० सजिल्दका २॥)

८ **लब्धिसार**—श्रीनेमिचन्द्राचार्यकृत मूल गाथायें, और स्व० पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृतछाया और हिन्दीटीका सहित। मूल्य सजिल्दका १॥)

९ **प्रवचनसार**—श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत मूल, अमृतचन्द्र जयसेनकी दो संस्कृत टीकायें, स्व० पांडे हेमराजकी हिन्दीटीका, प्रो० ए० एन० उपाध्याय एम० ए० की अंग्रेजीटीका और अंग्रेजीमें महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना है। सजिल्दका मूल्य ५)

१० **परमात्मप्रकाश और योगसार**—श्रीयोगीन्द्रदेवकृत अपभ्रंश भाषाके दोहे, श्रीब्रह्मदेवसूरिकृत संस्कृतटीका, स्व० पं० दौलतरामजीकृत भाषाटीका है। प्रो० ए० एन्० उपाध्याय एम० ए० की लिखी महत्त्वपूर्ण अंग्रेजी प्रस्तावना है, अंग्रेजी प्रस्तावनाका हिन्दी सार भी हैं। मूल्य सजिल्दका ४॥).

११ **समयसार**—श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत गाथायें, अमृतचन्द्राचार्य जयसेनाचार्यकृत दो संस्कृत टीकायें और स्व० पं० जयचन्द्रजीकृत हिन्दीटीका सहित। मूल्य सजिल्दका ४॥)

१२ **द्रव्यानुयोगतर्कणा**—श्रीभोजसागरकृत, अप्राप्य है। मूल्य २)

१३ **स्याद्वादमंजरी**—श्रीमल्लिषेणसूरिकृत मूल और पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए० कृत हिन्दी अनुवाद सहित। न्यायका अपूर्व ग्रंथ है। बड़ी खोजसे लिखे हुए १३ परिशिष्ट हैं। मूल्य सजिल्दका ४॥).

१४ **सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र**—श्रीमत् उमास्वातिकृत मूल सूत्र और संस्कृतभाष्य, पं० खूबचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत विस्तृत भाषाटीका। मूल्य सजिल्दका ३)

१५ **पुष्पमाला मोक्षमाला और भावनाबोध**—श्रीमद्राजचन्द्रकृत, अनुवादकर्त्ता—पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए०, मू० ।॥)

१६ **उपदेशछाया और आत्मसिद्धि**—श्रीमद्राजचन्द्रप्रणीत। अनुवादकर्त्ता—पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए० मू० ॥)

१७ **योगसार**—श्रीयोगीन्द्रदेवकृत दोहा, पं० जगदीशचन्द्रजी एम० ए० कृत भाषानुवाद मू. ।)

१८ **श्रीयोगीन्द्रदेव और परमात्मप्रकाश**—प्रो० ए० एन० उपाध्याय लिखित महत्त्वपूर्ण अंग्रेजी ग्रंथ, मू० १)

गुजराती ग्रंथ—

१ **श्रीमद्राजचन्द्र**—तत्त्वज्ञानपूर्ण महान् ग्रन्थ, महात्मा गांधीजीकी लिखी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना सहितका मूल्य सिर्फ ५) है। इसका हिन्दी अनुवाद भी बहुत जल्दी प्रकाशित होगा—छप रहा है।

२ **भावनाबोध**—श्रीमद्राजचन्द्रकी अपूर्व रचना, मूल्य सजिल्दका सिर्फ ।)

नोट—सभी ग्रंथोंका मूल्य बहुत सस्ता-लागतके लगभग रखा गया है। मँगाकर आत्मकल्याण कीजिए। विशेष विवरण बड़े सूचीपत्रसे जानिये।

मिलनेका पता—**श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडल** (रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला)
खाराकुवा जौहरी बाजार, बम्बई नं. २